जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 112
जुलाई, 2025
मूल्य : 25/- रुपए

ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

जुलाई 2025 **वर्ष-11 • अंक-112**

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोनः 9968288050, 011-22728461

•

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com

वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : **रु. 25** (एक प्रति), वार्षिक : **रु. 350/-** संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : **रु. 500/-** वार्षिक (विदेश) : **$110** यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : **रु. 3000/-** संस्था : **रु. 5000/-**

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • **कुसुमलता सिंह** स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. **संपादकीय**

साक्षात्कार

6. प्रकृति भी नारी की तरह सहनशील होती है
(युवा गोंड कलाकार **संतोषी परास्ते** से **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

लेख

8. सिक्किम की लेपचा जनजाति : **वीरेन्द्र परमार**

11. संताली लोकगीतों में संताल हूल... : **डॉ. शर्मिला सोरेन**

13. आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव उनवांस की यात्राकथा : **अश्विनी कुमार आलोक**

19. हार्ट लैम्प को बुकर प्राइज : **प्रभुनाथ शुक्ल**

23. गोंडी की बोलियों का भाषावैज्ञानिक अन्वेषण : **हीरालाल शुक्ल**

कहानी

27. आई लाचा : **मूल लेखक - अनेमन सिंह, अनुवाद - नीलम शर्मा 'अंशु'**

34. निःशब्द सफर : **मनीषा मंजरी**

39. नई राह : **डॉ. अनीता सिंह चौहान**

कविताएँ/ग़ज़ल

42. **शांति नायर** 43. **विजय कुमार सिंघल**

निबंध

21. अपनी चुप्पियों को तोड़ते रहें : **भूपेन्द्र भारतीय**

पुस्तक चर्चा

44. हिंदी बालसाहित्य की 75 श्रेष्ठ पुस्तकें : **उषा यादव**

पुस्तक समीक्षा

46. फूलों के आलते में रेत की दीवार : **रितेश भारद्वाज**

लघुकथा

7. चुप्पियों के बीच : **पवन शर्मा**

20. **कहावतें**

39. **यादें**

22. **क्या है ककसाड़?**

48. **पत्र**

50. **साहित्यिक समाचार**

आवरण गोंड कलाकृति - संतोषी परास्ते

(इनकी विशेषता है गोंड चित्र में फूल की तरह रेखाओं का प्रयोग)

मो. 62600-71110

संपादकीय

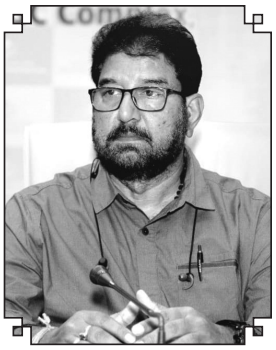

यह पत्रिका जो केवल पत्रिका नहीं बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से सांस्कृतिक यात्रा भी है. अपने पूरे समयबोध, सरोकार और सच्चाई के साथ, ठीक पर वक्त यानी हर महीने की शुरुआत में आपके हाथों तक पहुँचे,यह टीम ककसाड़ की जिद नहीं, बल्कि एक चुपचाप निभाई जाती जिम्मेदारी रही है। इस बार भी दिनों-दिन गहराते आर्थिक मसलों, तमाम तरह की मुश्किलों, उथल-पुथल और तपते हुए मौसम के बावजूद, जुलाई का यह अंक आपके हाथों में है, हमारे आपके बीच कायम लंबे समय के भरोसे की तरह।

जून का पिछला महीना बीत तो गया, पर जाते-जाते कितना कुछ ऐसा कह गया है जो केवल अख़बारों में पढ़ा और मोबाइल, टीवी में देखा नहीं जा सकता। किसी किसान के सूखते हुए खेत, किसी मजदूर मां की खाली रोटी के डिब्बे, और किसी हताश युवा के अधूरे सपनों में दर्ज होकर रह गया है। क्या घर, क्या गांव, क्या देश और क्या परदेस, सभी जगह कहीं कुछ ऐसा घटा, जिसने इस बार के मौसम को महज ऋतु नहीं, एक बेचौन प्रतीक्षा में बदल दिया। बिलकुल वैसे ही जैसे सफेद कोरे पन्ने पर कोई सुबह या शाम दिखाई नहीं देती।

मौसम विभाग ने ऐलान किया था कि 28 मई को मानसून बस्तर में प्रवेश कर चुका है। फिर भी जून महीना लगभग सूखा ही गुजर गया। आसमान नीला ही रहा, खेत प्यासे ही रहे, और किसान आस लगाए बैठे रहे। खेती-बाड़ी को नहीं समझने वाले यह सोच सकते हैं, कि मानसून के दो-तीन हफ्ता विलंब से आने से भला क्या बिगड़ जाएगा? और यह भी हो सकता है मानसून आगे भरपूर बरसे। पर एक पुरानी कहावत है **"का बरसा जब कृषि सुखाने"**।

सोचनीय विषय है कि, जिनके पास चंद्रमा पर कॉलोनी बनाने की तकनीक है, जो मंगल पर जीवन की संभावनाएं खोज रहे हैं, सूरज के दरवाजे पर दस्तक दे रहे हैं। जिनके पास बादलों से भी ऊपर मंडराते सैकड़ों सेटेलाइट हैं और जाने कितने कितने मेगापिक्सल वाले निगरानी कैमरे, सुपर कंप्यूटरो से लैस एक से बढ़कर एक विशेषज्ञ वे सब मिलकर भी आज तक यह तय नहीं कर पाए कि वर्षा कब होगी। कृत्रिम बारिश करवाकर प्रकृति को चुनौती देने वाले विज्ञान का ये "एल्गोरिद्मिक गर्व" बारिश की आहट तक नहीं पकड़ पाता। हाँ, ग्राफ जरूर बनाता है, लाल, पीले, नीले मटमैले, चटख जैसे किसान के जीवन को रंगों की चार्ट शीट में कैद किया जा रहा हो। विज्ञान की प्रगति पर इतना भरोसा होने के कारण कहीं हमारी दृष्टि अधिकाधिक विशेषीकृत और संकीर्ण तो नहीं होती जा रही? क्योंकि प्राकृतिक जगत का जिस कुटिलता से हम दोहन कर रहे हैं उसका और भी खतरनाक प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है.

शायद इसी असमर्थता में छिपा है वह पुराना यक्ष, जो कालिदास के मेघदूत में अमरकंटक की चोटी पर निर्वासित बैठा है, विरह में डूबा हुआ। वह बादलों को संदेशवाहक बनाता है, और हम ? हम तो बादलों को केवल उपग्रह चित्रों में ढूँढ रहे हैं। न उसमें प्रेम बचा, न आस्था बस केवल शुष्क श्डेटाश्श और 'डेटा'।

वहीं दूसरी ओर, बिना किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला के, बस्तर के सुदूर गांव के किसी बूढ़े आदिवासी को यह आभास हो जाता है कि इस साल वर्षा कितनी कम या ज्यादा होगी। वह चीटियों की चाल, कीड़े-मकोड़ों की हरकतों, चिड़ियों की परवाज, साल वृक्ष की छाल, महुए के फूल और चूहे, गिलहरी की भाग-दौड़ देखकर निर्णय कर लेता है। और अक्सर उसका अनुमान सटीक भी निकलता है। इतना सटीक कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक 'क्लाइमेट मॉडल' शर्मिंदा हो जाएँ।

यह 'प्राकृतिक बौद्धिकता' किसी विश्वविद्यालय की डिग्री से नहीं आती, यह उस जीवन-दर्शन से उपजती है जिसे हम 'पिछड़ा' समझकर उपेक्षित करते आए हैं। क्लाड लेवी स्ट्रास (Claude Lévi-Strauss) ने कहा था कि "primitive" सभ्यताएं केवल रहन-सहन नहीं, बल्कि प्रकृति की गूढ़तम भाषा की व्याख्यायें होती हैं। और **कैप्रा (Capra) ने स्वीकार किया कि जो 'Deep Ecology' पश्चिम ने हाल में खोजी है, वह भारत के जंगलों में सदियों से रोजमर्रा की आदत रही है।**